सिलिकोसिसः एक्शन रिसर्च ने बदली तस्वीर

डॉ. आशीष गुप्ता, अमूल्य निधि एवं नवनीत वाडकर

सिलिकोसिस एक गंभीर बीमारी है, जिसका कोई इलाज नहीं है। गुजरात की क्वाट्र्ज़ और स्टोन क्रशर्स ही इसकी जनक हैं, जिससे मप्र के अलीराजपुर, झाबुआ और धार ज़िलों के आदिवासी प्रभावित हैं। पहले इस बीमारी को टीबी ही समझा जाता था, लेकिन इस क्षेत्र में रिसर्च ने साबित कर दिया कि यह टीबी नहीं, बल्कि सिलिकोसिस है। इससे इस बीमारी से ग्रस्त लोगों और उनके परिजनों को उनके वांछित अधिकार हासिल करने में मदद मिली है।

एक अनुमान के अनुसार भारत में 30 लाख से भी अधिक श्रमिक सिलिका धूल कणों के सीधे संपर्क में हैं, जबकि निर्माण और भवन गतिविधियों में शामिल करीब 85 लाख लोगों को क्वाट्र्ज़ की धूल (कांच या ऐसे ही पदार्थों के बारीक कण) का सामना करना पड़ता है। इन श्रमिकों के फेफड़ों की कार्यप्रणाली का आकलन करने वाली कई रिपोर्ट्स में उनके रेस्ट्रिक्टिव और ऑब्सट्रक्टिव दोनों पैटर्न सामने आए हैं। मध्य भारत में सिलिका से बनने वाली पेंसिल के श्रमिकों पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि उनकी मृत्यु की दर बहुत अधिक है। इन श्रमिकों की औसत आयु 35 साल थी, जबकि इनके सिलिका धूल कणों के संपर्क की औसत अवधि 12 साल थी।

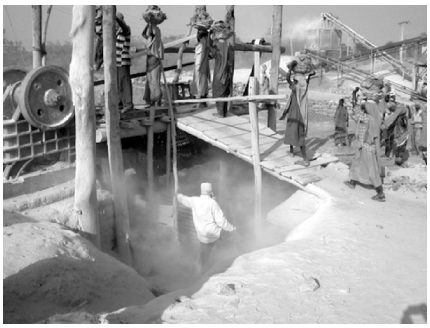

गुजरात के गोधरा और बालासिनोर में क्वाट्र्ज़ क्रशिंग कारखाने क्वाट्र्ज़ चूरे का निर्माण करते हैं। ग्लास, सिरेमिक और अन्य कई उद्योगों में क्वाट्र्ज़ चूर्ण की काफी मांग रहती है। इन उद्योगों में स्वास्थ्य और सुरक्षा के मानदंड काफी लचर रहे हैं।

सिलिकोसिस फेफड़ों से सम्बंधित ऐसा विकार है जो सिलिका के बहुत ही बारीक कणों के सांस के साथ फेफड़ों में जाने की वजह से पैदा होता है। सिलिका भूपर्पटी का एक बड़ा हिस्सा है। इसके कणों से संपर्क खनन कार्य और पत्थरों की पिसाई के दौरान होता है। कारखाना कानून में यह अधिसूचित बीमारी के रूप में सूचीबद्ध है और इसे उन बीमारियों की सूची में शामिल किया गया है, जिसके लिए कामगार मुआवज़ा कानून, 1923 और ईएसआई कानून, 1948 के तहत क्षतिपूर्ति का दावा भी किया जा सकता है।

गोधरा के कारखानों में तो ईएसआई कानून लागू किया हुआ है, लेकिन बालासिनोर के कारखानों में इसका कोई अस्तित्व ही नहीं है। यहां काम करने वाले अनेक मज़दूर सिलिकोसिस से ग्रस्त हैं, लेकिन किसी के पास भी ऐसा एक भी प्रमाण नहीं है जो साबित कर सके कि अमुक श्रमिक ने अमुक कारखाने में काम किया। इनके पास न तो कारखाना कानून के तहत जारी होने वाला पहचान-पत्र है और न ही ईएसआई कार्ड। इनके पास एक भी ऐसा साक्ष्य नहीं है, जो इन्हें उनके कानूनी अधिकार दिलाने में मददगार हो।

मप्र के अलीराजपुर, झाबुआ और धार ज़िले के आदिवासी बड़ी संख्या में गुजरात व राजस्थान जाकर वहां के क्वाट्र्ज़ या गिट्टी कारखानों में काम करते हैं। इन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासी परिवारों की खाद्य सुरक्षा अक्सर खतरे में रहती है। उन्हें अपने आसपास काम नहीं मिल पाता है। इस वजह से वे मज़दूरी की तलाश में पड़ोसी राज्यों में पलायन करने को विवश हो जाते हैं। क्वाट्र्ज़ या गिट्टी कारखानों में काम करने का नतीजा अंततः सिलिकोसिस बीमारी के रूप में सामने आता है।

यह अध्ययन मप्र के तीन ज़िलों झाबुआ, अलीराजपुर और धार में किया गया। इसका उद्देश्य सिलिकोसिस बीमारी

के फैलाव का आकलन करना, इस बीमारी का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव जानना और बीमारी से ग्रस्त परिवारों के जीवन स्तर, खासकर महिलाओं व बच्चों पर पड़ने वाले प्रभावों को समझना था। सिलिकोसिस प्रभावित परिवारों को संगठित करने, पलायन करने वाले असंगठित श्रमिकों के लिए राज्य व राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर कानूनी एवं नीतिगत मुद्दों की समीक्षा करने और उनके पुनर्वास के संभावित माध्यमों पर विचार करने के लिए एडवोकेसी का इस्तेमाल किया गया।

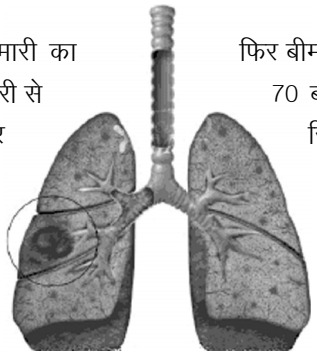

इस अध्ययन के लिए मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों विधियों का इस्तेमाल किया गया। इसमें मुख्य रूप से घर-घर जाकर सर्वे करने के लिए एक समग्र प्रश्नावली तैयार की गई। लोगों से साक्षात्कार करके उनसे प्राप्त जवाबों का मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों तरह से विश्लेषण किया गया। प्रश्नावलियों के अलावा ग्राम सभाओं, पंचायत प्रतिनिधियों व स्वास्थ्य सुविधा प्रदाताओं से चर्चाओं और चिकित्सकीय रिकॉर्ड्स की जांच करके भी सूचनाएं संग्रहित की गईं। सिलिकोसिस के जो भी मामले सामने आए, उनकी पुष्टि पीड़ितों द्वारा अतीत में किए गए कार्य की प्रवृत्ति, चिकित्सकीय परीक्षण और सीने के एक्स-रे से की गई। सिलिकोसिस का पता लगाने के लिए ये उपाय पर्याप्त माने जाते हैं। कुछ मामलों में गंभीरता का वर्गीकरण करने के लिए आईएलओ के रेडियोग्राफ्स ऑफ न्यूमोकोनियोसिस के अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण का इस्तेमाल किया गया। श्वसन प्रणाली को पहुंचे नुकसान का आकलन करने के लिए चिकित्सा विशेषज्ञों द्वारा स्पाइरोमेट्री भी की गई।

वर्ष 2006 में शिल्पी केंद्र ने झाबुआ ज़िले की अलीराजपुर तहसील के 21 गांवों का प्रारंभिक सर्वे किया था। यह सर्वे 2006-07 में 'मौत की नियति' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इसमें खुलासा हुआ था कि 218 घरों के 489 लोग निश्चित रूप से सिलिका के संपर्क में आए थे। इनमें से 158 की मौत हो गई, जबकि 266 बीमार थे। इसका मतलब हुआ कि 86 फीसदी (424) या तो मारे गए या फिर बीमार हुए। प्रभावितों में 18 वर्ष से कम उम्र के 70 बच्चे भी थे, जिनमें से 31 बच्चों की मृत्यु सिलिकोसिस की वजह से हुई।

दूसरी रिपोर्ट वर्ष 2008 में प्रकाशित हुई, जिसके अनुसार 385 लोग सिलिका के संपर्क में आए। इनमें से 41 लोग मौत के मुंह में पहुंच गए, जबकि शेष 344 बीमार थे। इस तरह 2007 से 2008 के दौरान ही तीन ज़िलों के 40 गांवों के प्रभावितों की संख्या 424 से 809 हो गई। यह भी पाया गया कि 10 गांवों के 117 बच्चों के माता-पिता में से किसी एक या दोनों की इस घातक बीमारी के कारण मौत हो गई। संग्रहित की गई जानकारियों के साथ पंचनामा, निशक्तता प्रमाण-पत्र, प्रभावित परिवारों द्वारा सरकार को भेजे गए पत्रों इत्यादि में पाई गई सम्बंधित सूचनाओं को भी संकलित किया गया।

वर्ष 2011 में किए गए तीसरे अध्ययन में मप्र के तीन सर्वाधिक प्रभावित ज़िलों झाबुआ, अलीराजपुर और धार के 14 ब्लॉक्स को शामिल किया गया था। इसमें अधिकांश प्रभावित गांव शामिल कर लिए गए थे (झाबुआ के 211 गांवों में से 51, अलीराजपुर के 191 में से 33 और धार के 382 में से 18 गांव)। इन सभी गांवों में पाया गया कि कुल 743 ऐसे परिवार थे, जिनका कम से कम एक सदस्य पलायन करके क्वार्ट्ज़ या गिट्टी कारखाने में काम करने गया और इस कारण वह सिलिका धूल कणों के संपर्क में आ गया। आज इन परिवारों में से कम से कम एक सदस्य के सिलिकोसिस बीमारी से ग्रस्त होने की आशंका है। इस तरह इन परिवारों के 4331 सदस्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सिलिकोसिस से प्रभावित हैं। ये अपने परिवार के लिए कमाने वाले सदस्य थे। अब वे लाचार हैं।

इन तीन ज़िलों के 102 गांवों को देखें तो साफ हो जाएगा कि सिलिकोसिस से प्रभावितों की संख्या वर्ष 2008 में 809 थी, जो 2011 में बढ़कर 1701 हो गई। इससे मरने वालों की संख्या भी बढ़कर 503 हो गई।

यह पाया गया कि मप्र के तीन ज़िलों के 202 परिवारों के 362 लोग प्रभावित थे। यह भी पाया गया कि इस

बीमारी के कारण जिन परिवारों पर असर पड़ा, उसके 378 लोगों में से 57 फीसदी का कोई सहारा नहीं रह गया था। इन अनाथों के अलावा ऐसे बच्चों की भी बड़ी संख्या थी, जिनके माता या पिता में से किसी एक की मृत्यु सिलिकोसिस के कारण हुई थी।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ है कि सिलिकोसिस से प्रभावित 511 लोगों में से 74 (यानी 14 फीसदी) अपनी बीमारी के इलाज पर एक लाख रुपए से भी ज़्यादा खर्च कर चुके हैं। इनके अलावा 277 प्रभावित (यानी 54 फीसदी) इस लाइलाज बीमारी पर 25 हज़ार रुपए से ज़्यादा खर्च कर चुके हैं।

वर्ष 2006 में प्रकाशित पहली रिपोर्ट 'मौत की नियति - प्रथम' के आधार पर एक प्रभावित मज़दूर जुवान सिंह ने शिल्पी केंद्र, खेडूत मज़दूर चेतना संगठन (केएमसीएस) और सिलिकोसिस पीड़ित संघ के सहयोग से एक शिकायत राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को प्रस्तुत की थी। इस शिकायत और अध्ययन रिपोर्ट के आधार पर आयोग ने 2006 में सिलिकोसिस को एक गंभीर समस्या मानते हुए इस सम्बंध में योजना बनाने के लिए एक कार्यबल का गठन किया।

मानवाधिकार आयोग द्वारा सिलिकोसिस से सम्बंधित शिकायतों की सुनवाई के दौरान ही 'प्रसार' द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की गई। केएमसीएस ने भी इसी मामले में हस्तक्षेप याचिका दायर की। इसके बाद मानवाधिकार आयोग ने सुनवाई बंद कर दी और वह भी सर्वोच्च न्यायालय में दायर इस याचिका में एक पक्ष बन गया। सुनवाई के दौरान ही शीर्ष अदालत ने 5 मार्च 2009 को एक आदेश जारी कर आयोग को निर्देशित किया कि वह सिलिकोसिस से हुई मौत के साबित मामलों में मुआवज़ा और इस बीमारी के साथ जी रहे लोगों के पुनर्वास के मसले पर आगे की कार्रवाई करे। सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में आयोग ने नवंबर 2010 में एक आदेश पारित कर गुजरात सरकार से कहा कि वह सिलिकोसिस से मरने वाले 238 लोगों के निकटतम परिजनों को तीन-तीन लाख रुपए का मुआवज़ा प्रदान करे। साथ ही मप्र में रहने वाले सिलिकोसिस बीमारी से ग्रस्त 304 लोगों के लिए पुनर्वास पैकेज जारी करने की अनुशंसा मप्र सरकार से की।

मप्र सरकार के श्रम विभाग ने 15 जुलाई 2011 को एक आदेश जारी किया कि सिलिकोसिस से प्रभावित सभी 304 परिवारों को मप्र स्लेट पेंसिल कामगार मंडल (मंदसौर) के तहत प्रदत्त तमाम लाभ प्रदान किए जाएंगे। इस तरह अध्ययन और इस सम्बंध में चलाए गए अभियानों का मुआवज़े जैसे मुद्दों पर असर हुआ है। भारत में काम के दौरान शारीरिक क्षति और व्यावसायिक बीमारियों से पीड़ित लोग मुख्यतः दो कानूनों - कामगार मुआवज़ा कानून, 1923 और कर्मचारी राज्य बीमा कानून, 1948 के तहत आते हैं। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने सिलिकोसिस के मामले में मुआवज़ा सम्बंधित गाइडलाइन तैयार करके उसे एक विशेष रिपोर्ट के तौर पर संसद में पेश किया है।

धार ज़िले में लगातार चलाए गए अभियान का ही यह नतीजा है कि सिलिकोसिस से प्रभावित परिवारों को मनरेगा के तहत कम शारीरिक मेहनत वाला काम मिलने लगा है। इन परिवारों के सदस्यों के लिए मनरेगा के तहत 200 दिन का काम उपलब्ध करवाया जा रहा है।

इस मुद्दे की पहचान सबसे पहले लोगों ने 'गोधरा की फैक्ट्री वाली बीमारी' के रूप में की थी। इसके बाद शोध करने वाले कार्यकर्ताओं की एक टीम ने इस मुद्दे की पड़ताल शुरू की। स्टैंडर्ड प्रोटोकॉल के आधार पर समुदाय आधारित एक स्टडी टूल विकसित किया गया, ताकि सिलिकोसिस को एक बीमारी के रूप में पहचान दिलवाई जा सके। इस एक्शन रिसर्च का इस्तेमाल असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए श्रम कानूनों, अधिनियमों और नीतियों में बदलाव लाने के वास्ते एडवोकेसी टूल के तौर पर किया जा रहा है। यह इसी का परिणाम था कि एक निगरानी बोर्ड का गठन किया गया और साथ ही प्रभावित परिवारों को आजीविका उपलब्ध करवाने के लिए मनरेगा कानून 2005 में परिवर्तन किया गया। इसने इस बहस को भी आगे बढ़ाया कि श्रमिकों के स्वास्थ्य और उनके अधिकारों के लिए सरकार भी समान रूप से जवाबदेह है। साथ ही व्यावसायिक स्वास्थ्य सम्बंधी अध्ययनों के दायरे को कारखाना आधारित अध्ययन से बढ़ाकर समुदाय आधारित अध्ययन कर दिया।

वर्ष 2006 में अध्ययन रिपोर्ट 'मौत की नियति' से इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर दखल देने की जो शुरुआत हुई, उससे सिलिकोसिस से ग्रस्त लोगों का संघर्ष और भी मज़बूत हुआ है। इसके अलावा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने सिलिकोसिस पर अपनी एक विशेष रिपोर्ट भी संसद में पेश की। उसने देश में श्रमिकों के कल्याण से सम्बंधित कानूनों में बदलाव करने का भी सुझाव दिया है। आयोग ने एक प्रभावी कानून बनाने का परामर्श भी दिया है ताकि पीड़ितों को सामाजिक सुरक्षा के साथ मुआवज़ा भी अपने आप मिल जाए। आयोग ने यह भी निर्देश दिया है कि उपलब्ध प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक साधनों का इस्तेमाल सिलिकोसिस से होने वाली मौतों को रोकने के लिए किया जाना चाहिए। ***(स्रोत फीचर्स)***